प्रथमोऽध्यायः

तिब्बत में हिमाचल की गोद में मानव ने जन्म लिया। जगदम्बा प्रभु ने मनन की सन्तान मानव की ज्ञानपिपासा तथा भूख मिटाने के लिए इस नवजात शिशु को वेदरूप दूध की धरा में यथेष्ट स्नान कराया। मानव-सृष्टि चारों ओर फैलने लगी। जहां जगदम्बा का यह नवजात शिशु जाता, अपने प्यारे वेद के सहारे पदार्थों और संस्थाओं का नामकरण करता। इन वेद के भक्तों ने नगरी बसाई, नामकरण के समय वेद में पढ़ा –

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवनां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषा वृतः॥

अथर्व. १०.२.३१

उन्होंने अपनी राजधानी का नाम अयोध्या रख दिया। इसी वंश का एक राजा अपने दादा का सङ्कल्प पूरा करने के लिए कटिबद्ध था। अन्त को वह सफल हुआ। वेद में गन्तव्य स्थान की ओर जाने वाली सेना का नाम गङ्गा पड़ा है। इस पराक्रमी सगर के पोते वीर भगीरथ ने इस गन्तव्य लक्ष्य की ओर जाने वाली नदी का नाम भी गङ्गा रख दिया।

ये वेदभक्त भारत के पूर्व की ओर घनी बस्तियाँ बसाकर पश्चिम की ओर बढ़े। पश्चिम की ओर विशाल मैदान पड़ा था। वेदभक्तों ने देखा – इस जंगल को सुन्दर बस्ती बनाना है। इसलिए यहाँ रात-दिन श्रम करना पड़ेगा। **'कुर्वन्नेवेह कर्माणि'** का पाठ पढ़ने वालों ने जंगल कुरु-जांगल तथा बस्ती का नाम कुरुक्षेत्र रखा। विदेह तथा कोशल की ओर से आगे बढ़ती हुई यह सेना पञ्जाब की ओर आगे बढ़ी, किन्तु महाभारत-काल तक पञ्जाब में छोटी-छोटी बस्तियाँ थी और लम्बे-लम्बे जंगल थे। हाँ, शतपथब्राह्मण (काल) में विदेह, कोशल तथा कुरुक्षेत्र का तो वर्णन है, पञ्जाब की बस्तियों का नहीं। साथ ही कुरुक्षेत्र को बड़ी पवित्र भावना से याद किया गया है – **'कुरुक्षेत्रं वै देवानां देवयजनमास'**। इस

कुरुक्षेत्र में एक दिन न्याय और अन्याय की सेना आमने-सामने लड़ने के लिए इकट्ठी हुई। विचित्र बात यह है कि न्याय का योद्धा मोह के पंजे में फँसकर **'आचार्याः पितरः पुत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा'** की दुहाई देने लगा। उस समय सच्चे मार्गदर्शक ने चिल्लाकर कहा - यह जीवन धर्मक्षेत्र है और यह पवित्र भूमि भी धर्मक्षेत्र है। धर्म का अर्थ पूजा-पाठ, गाना-बजाना, भजन करना आदि नहीं है, धर्म करने की वस्तु है, गाने की नहीं। यह मानव जीवन भी इस पवित्र भूमि की तरह धर्मक्षेत्र है, अर्थात् 'कुरु' क्षेत्र है, भज-गाय-नृत्य-क्षेत्र नहीं। और तू यहाँ अवसाद की मुद्रा का अभिनय कर रहा है। बस, गीता का आरम्भ 'धर्म-क्षेत्रे कुरुक्षेत्रे' शब्दों से करने का यही गूढ भाव है। अक्षरों का अर्थ सीधा है। धृतराष्ट्र ने सञ्जय से पूछा -

धृतराष्ट्र उवाच

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय॥१॥

सञ्जय! धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे युयुत्सवः समवेताः मामकाः पाण्डवाः च एव किम् अकुर्वत?

हे सञ्जय! धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में युद्धार्थी होकर इकट्ठे हुए मेरे और पाण्डु के (बच्चे) क्या करने लगे?

सञ्जय उवाच

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दूर्योधनस्तदा।
आचार्यमुपसङ्गम्य राजा वचनमब्रवीत्॥२॥

तदा तु राजा दुर्योधनः पाण्डवानीकम् व्यूढम् दृष्ट्वा आचार्यम् उपसङ्गम्य वचनम् अब्रवीत्।

तब तो राजा दुर्योधन ने (जब) पाण्डवों की सेना को व्यूहबद्ध (सामने खड़े) देखा, तो गुरु द्रोणाचार्य के पास पहुँचकर (वह इस प्रकार) वचन बोला।

विशेष विवेचन :- हर मनुष्य का शरीर उसका धर्म-क्षेत्र अर्थात् कुरुक्षेत्र है। उसमें दैव तथा आसुर सङ्कल्प इसी प्रकार प्रतिक्षण युद्धार्थी होकर आमने-सामने खड़े रहते हैं।

महाभारत का युद्ध भारत के इतिहास की एक सच्ची घटना है, कपोल-कल्पना नहीं। उस घटना का प्रयोग महाकवि वेदव्यास जी ने मनुष्य को धर्म का सच्चा स्वरूप दिखाने के लिए अपने काव्य में किया है और दैवी सम्पत्ति की सेना के सञ्चालक का स्वरूप योगिराज कृष्ण को दिया है। भाव कृष्ण वार्ष्णेय के, शब्द कृष्ण द्वैपायन के, घटना इतिहास की। **अहो लोकोत्तरः सङ्गमः!**

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम्।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता॥३॥

आचार्य! तव धीमता शिष्येण द्रुपदपुत्रेण व्यूढाम् एताम् पाण्डुपुत्राणाम् महतीम् चमूम् पश्य।

हे आचार्य! आपके बुद्धिमान् शिष्य द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न के द्वारा व्यूहबद्ध इस पाण्डु-पुत्रों की विशाल सेना को देखिये।

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः॥४॥

अत्र युधि भीमार्जुनसमाः शूराः महेष्वासाः युयुधानः विराटः च महारथाः द्रुपदः च।

इस युद्ध-व्यूह में भीम तथा अर्जुन के समान शूर महाधनुर्धर खड़े हैं। युयुधान हैं, विराट हैं और महारथी द्रुपद हैं।

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान्।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैव्यश्च नरपुङ्गवः॥५॥

धृष्टकेतुः चेकितानः वीर्यवान् काशिराजः च पुरुजित् कुन्तिभोजः च नरपुङ्गवः शैव्यः च।

धृष्टकेतु है, चेकितान है, वीर्यवान् काशिराज है, पुरुजित् है, कुन्तिभोज है और नरपुङ्गव शिविनरेश हैं।

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान्।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः॥६॥

विक्रान्तः युधामन्युः च वीर्यवान् उत्तमौजाः च सौभद्रः द्रौपदेयाः च सर्वे एव महारथाः।

यहाँ इस युद्ध-व्यूह में पराक्रमी युधामन्यु भी है, वीर्यवान् उत्तमौजाः भी है। सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु भी है, द्रौपदी के पाँचों पुत्र भी हैं और ये सब के सब महारथी हैं।

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते॥६॥

द्विजोत्तम! ये तु अस्माकम् विशिष्टाः मम सैन्यस्य नायकाः तान् निबोध, तान् ते संज्ञार्थम् ब्रवीमि।

हे द्विजोत्तम! जो भी हमारे विशेष लोग हैं, मेरी सेना के नेता हैं, उन्हें भी जानिये। आपको ठीक सूचना देने के लिए नाम लेकर कहता हूँ -

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिञ्जयः।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च॥८॥

भवान् भीष्मः च कर्णः च समितिञ्जयः कृपः च अश्वत्थामा विकर्णः च तथा एव च सौमदत्तिः।

सबसे प्रथम तो हे द्रोणाचार्य! आप हमारे नेता हैं, फिर भीष्म और कर्ण, फिर युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले कृपाचार्य, फिर अश्वत्थामा, फिर विकर्ण और फिर सौमदत्ति।

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः॥९॥

अन्ये च बहवः मदर्थे त्यक्तजीविताः नाना-शस्त्र-प्रहरणाः शूराः सन्ति, (ये) सर्वे युद्धविशारदाः।

और भी मेरे लिए अपने प्राण परित्याग करने वाले नाना प्रकार के शस्त्र-प्रहार में निपुण शूर पुरुष हैं, जो सब के सब युद्ध-विशारद हैं।

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम्।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम्॥१०॥

तत् भीष्माभिरक्षितम् अस्माकम् बलम् अपर्याप्तम्। एतेषाम् तु इदम् भीमाभिरक्षितम् बलम् पर्याप्तम्।

सो भीष्म द्वारा रक्षित हमारी सेना अपरिमेय है और इधर इनकी यह भीम द्वारा रक्षित सेना तो बस नपी-तुली है।

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि॥११॥

सर्वेषु च अयनेषु यथाभागमवस्थिताः भवन्तः सर्वे एव हि भीष्मम् एव अभिरक्षन्तु।

और सब महत्त्वपूर्ण मोडों पर अपने-अपने भाग पर खड़े हुए आप सब के सब भीष्म का बचाव करें।

तस्य सञ्जनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान्॥१२॥

प्रतापवान् कुरुवृद्धः पितामहः तस्य हर्षं सञ्जनयन् उच्चैः सिंहनादं विनद्य शङ्खम् दध्मौ।

उस समय कुरुवंश के बूढ़े प्रतापी भीष्म पितामह ने दुर्योधन को हर्षित करते हुए ऊँचा सिंहनाद करके शंख बजाया।

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत्॥१२॥

ततः सहसैव शङ्खाः च भेर्यः च पणवानकगोमुखाः अभ्यहन्यन्त। सः शब्दः तुमुलः अभवत्।

उसके पश्चात् एकदम शंख, नगाड़े, पणव, आनक, गोमुख आदि नाना प्रकार के बाजे बजने लगे। सम्पूर्ण वाद्यों का वह एक साथ नाद अति विशाल था।

ततः श्वैतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः॥१४॥

ततः श्वैतैः हयैः युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ माधवः पाण्डवः च एव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः।

तब श्वेत घोड़ों से युक्त महान् रथ में बैठे हुए माधव (कृष्ण) तथा पाण्डुपुत्र अर्जुन ने दिव्य शंख बजाये।

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः॥१५॥

हृषीकेशः पाञ्चजन्यम् धनञ्जयः देवदत्तम् (दध्मौ) भीमकर्मा वृकोदरः पौण्ड्रम् (नाम) महाशङ्खम् दध्मौ।

उन शंखों के नाम सुनिये। इन्द्रियों के राजा श्रीकृष्ण ने पाञ्चजन्य नाम का शंख बजाया। अर्जुन ने देवदत्त नामक शंख बजाया तथा भीमकर्मा भीमसेन ने पौण्ड्र नामक महान् शंख बजाया।

अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ॥१६॥

कुन्तीपुत्रः राजा युधिष्ठिरः अनन्तविजयम् (शङ्खं दध्मौ) नकुलः सहदेवः च सुघोषमणिपुष्पकौ (दध्मतुः)।

कुन्ती के पुत्र राजा युधिष्ठिर ने अनन्तविजय नामक शंख बजाया, नकुल और सहदेव ने सुघोष और मणिपुष्पक नामक शंख बजाये। अन्य लोगों ने भी अलग-अलग शंख बजाये।

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः॥१७॥

परमेष्वासः काश्यः च महारथः शिखण्डी च धृष्टद्युम्नः विराटः च अपराजितः सात्यकिः च।

महान् धनुर्धर काशिराज, महारथी शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, विराट और युद्ध में कभी पराजित न होने वाला सात्यकि।

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते।
सौभद्रश्च महाबाहुः शङ्खान्दध्मुः पृथक्पृथक्॥१८॥

पृथिवीपते! द्रुपदः द्रौपदेयाः च महाबाहुः सौभद्रः च सर्वशः पृथक् पृथक् शङ्खान् दध्मुः।

हे पृथिवीपति धृतराष्ट्र! द्रुपद, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, महाबाहु अभिमन्यु इन सबने चारों ओर अलग-अलग शंख बजा दिये।

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत्।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन्॥१९॥

नभः च पृथिवीम् च एव व्यनुनादयन् सः तुमुलः घोषः धार्तराष्ट्राणाम् हृदयानि व्यदारयत्।

आकाश और पृथिवी को गुँजाते हुए उस विशाल घोष ने धृतराष्ट्र के पुत्रों के दिल चीर डाले।

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान्कपिध्वजः।
प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः॥२०॥

अथ शस्त्र-सम्पाते प्रवृत्ते धार्तराष्ट्रान् व्यवस्थितान् दृष्ट्वा कपिध्वजः पाण्डवः धनुः उद्यम्य।

इस पर हथियारों की टक्कर आरम्भ हो जाने पर वानर के चिह्न वाली ध्वजा वाले पाण्डव अर्थात् अर्जुन ने धृतराष्ट्र के पुत्रों को सामने व्यूहबद्ध खड़े देखकर धनुष तानकर,

अर्जुन उवाच

हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते।
सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत॥२१॥

हे महीपते! तदा हृषीकेशम् इदम् वाक्यमाह। अच्युत! मे रथम् उभयोः सेनयोः मध्ये स्थापय।

हे राजन् धृतराष्ट्र! तब इन्द्रियों के राजा श्रीकृष्ण से यह वाक्य बोला। हे अच्युत! मेरे रथ को दोनों सेनाओं के बीच खड़ा कर दो।

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान्।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे॥२२॥

यावदहम् एतान् अवस्थितान् योद्धुकामान् निरीक्षे, अस्मिन् रणसमुद्यमे मया कैः सह योद्धव्यम्।

जरा मैं जाँच तो करूँ कि मेरे सामने लड़ने की कामना से कौन जमे हैं। मुझे इस युद्ध समारम्भ में किन-किन के साथ लड़ना है।

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः॥२३॥

अहम् ये एते अत्र युद्धे दुर्बुद्धेः धार्तराष्ट्रस्य प्रियचिकीर्षवः समागताः (तान्) योत्स्यमानान् (योद्धुकामान्) अवेक्षे।

मैं यहाँ इस युद्ध में दुर्बुद्धि दुर्योधन की मनचाही करने वाले जो लोग इकट्ठे हुए हैं, उन युद्धार्थियों को देखूँ तो सही।

सञ्जय उवाच

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम्॥२४॥

हे भारत! गुडाकेशेन एवम् उक्तः हृषीकेशः उभयोः सेनयोः मध्ये रथोत्तमम् स्थापयित्वा।

निद्रा के स्वामी अर्जुन ने जब श्रीकृष्ण से इस प्रकार कहा तो श्रीकृष्ण उस श्रेष्ठ रथ को दोनों सेनाओं के बीच खड़ा करके-

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम्।
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति॥२५॥

भीष्म-द्रोण-प्रमुखतः सर्वेषाम् महीक्षिताम् च प्रमुखतः, पार्थ! एतान् समवेतान् कुरून् पश्य इति उवाच।

भीष्म द्रोण के सामने और सम्पूर्ण राजाओं के सामने हे पार्थ! इन जुटे हुए कुरुवंशियों को देखो, इस प्रकार बोले।

तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः पितॄनथ पितामहान्।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा॥२६॥

अथ पार्थः तत्र स्थितान् पितॄन् पितामहान् आचार्यान् मातुलान् भ्रातॄन् पुत्रान् पौत्रान् तथा सखीन् अपश्यत्।

अर्जुन ने वहाँ डटे हुए पितरों, पितामहों, आचार्यों, मामाओं, भाइयों, बेटों, पोतों तथा मित्रों को देखा।

श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि।
तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान्॥२७॥

उभयोः सेनयोः अपि श्वशुरान् सुहृदः च एव (अपश्यत्) तान् सर्वान् बन्धून् अवस्थितान् समीक्ष्य सः कौन्तेयः।

और वहाँ दोनों सेनाओं में श्वशुर और हितैषियों को भी देखा। उन सब बन्धुओं को इस प्रकार रण में डटा देख कर वह कुन्ती पुत्र अर्जुन।

अर्जुन उवाच

कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत्।
दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्॥२८॥

परया कृपया आविष्टः विषीदन् इदम् अब्रवीत्, कृष्ण! इमम् स्वजनम् युयुत्सुम् समुपस्थितम् दृष्ट्वा।

अत्यन्त कृपा से भर कर दु:खी होते हुए इस प्रकार बोला– हे कृष्ण! इन सब अपने लोगों को युद्धार्थी रूप में उपस्थित देख कर।

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते॥२९॥

मम गात्राणि सीदन्ति मुखम् च परिशुष्यति, मे शरीरे वेपथुः च भवति रोमहर्षः च जायते।

मेरे अङ्ग धँसे जा रहे हैं, मुख सूख रहा है। मेरे शरीर में कँपकँपी तथा रोमाँच हो रहा है।

गाण्डीवं स्रंसते हस्तात् त्वक्चैव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः॥३०॥

गाण्डीवम् हस्तात् स्रंसते त्वक् च एव परिदह्यते, अवस्थातुम् च न शक्नोमि, मे मनः भ्रमति इव च।

गाण्डीव हाथ से छूटा जा रहा है, त्वचा जल रही है, मैं सम्भल नहीं रहा हूँ। मन चक्कर-सा खा रहा है।

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे॥३१॥

केशव! विपरीतानि निमित्तानि च पश्यामि, आहवे स्वजनम् हत्वा श्रेयः च न अनुपश्यामि।

हे केशव! सारे संसार की प्रवृत्ति यही देख रहा हूँ कि जिस निमित्त जो साधन प्रयोग करना चाहिए, उससे ठीक उल्टे साधन प्रयोग में आ रहे हैं, ये उल्टे लक्षण हैं, जिनका स्पष्ट दृष्टान्त यह युद्ध है। क्षत्रिय कल्याण के लिए युद्ध करते हैं परन्तु मुझे तो इस युद्ध में अपने आत्मीयों को मार कर पीछे कुछ कल्याण होगा, ऐसा नहीं दीखता।

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा॥३२॥

कृष्ण! विजयम् न काङ्क्षे राज्यम् सुखानि च न (काङ्क्षे) गोविन्द! नः राज्येन भोगैः जीवितेन वा किम्?

हे कृष्ण! न मैं विजय चाहता हूँ, न नाना प्रकार के सुख-भोग, हे गोविन्द! हमें राज्य-भोग और यहाँ तक कि जीवन से भी क्या लाभ?

येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च॥३३॥

येषाम् अर्थे नः राज्यम् काङ्क्षितम् भोगाः सुखानि च (काङ्क्षितानि) ते इमे प्राणान् धनानि च त्यक्त्वा युद्धे अवस्थिताः।

जिनके लिए हमें राज्य, भोग और सुखों की अभिलाषा है, वे ही आज प्राण और धन विसर्जन करके युद्ध में डटे हैं।

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा॥३४॥

आचार्याः पितरः पुत्राः तथैव पितामहाः च मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः तथा सम्बन्धिनः।

इनमें आचार्य भी हैं, पितर भी हैं, पुत्र भी हैं, पितामह भी हैं, मामा भी हैं, ससुर भी हैं, पोते भी हैं, साले भी हैं तथा अन्य सम्बन्धी भी हैं।

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किन्नु महीकृते॥३५॥

मधुसूदन! एतान् घ्नतः अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः अपि च हन्तुम् न इच्छामि किन्नु महीकृते।

हे मधुसूदन! ये सब मुझे मारने भी आएँ तो भी और इनके मारने से त्रिलोकी का राज्य मिलता हो तो भी मैं इन्हें मारना नहीं चाहता, फिर धरती के पीछे तो इन्हें क्या मारूँ।

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन।
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः॥३६॥

जनार्दन! धार्तराष्ट्रान् निहत्य नः का प्रीतिः स्यात्? एतान् आततायिनः हत्वा अस्मान् पापम् एव आश्रयेत्।

हे जनार्दन! इन धृतराष्ट्र के पुत्रों को मार कर हमें क्या सुख मिलेगा? उल्टा इन आततायियों को मार कर हमें पाप ही लगेगा, क्योंकि ये हमारे स्वजन हैं।

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान्।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव॥३७॥

तस्मात् वयम् स्वबान्धवान् धार्तराष्ट्रान् हन्तुम् न अर्हाः, माधव! स्वजनम् हत्वा हि वयम् कथम् सुखिनः स्याम?

इसलिए हमें अपने बन्धु धृतराष्ट्र-पुत्रों को मारना उचित नहीं है। हे माधव! भला अपने आत्मीय जनों को मारकर हम कैसे सुखी होंगे?

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम्॥३८॥

यद्यपि एते लोभोपहतचेतसः कुलक्षयकृतम् दोषम् मित्रद्रोहे च पातकम् न पश्यन्ति।

यद्यपि लोभ ने इनकी चेतना मार दी है और इसलिए ये लोग कुलक्षय से उत्पन्न होने वाले दोष को तथा मित्र-द्रोह के पातक को नहीं देखते।

कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम्।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन॥३९॥

कुलक्षयकृतम् दोषम् प्रपश्यद्भिः अस्माभिः अस्मात् पापात् निवर्तितुम् कथम् न ज्ञेयम्?

परन्तु हमारी बुद्धि लोभ ने नहीं मारी है। हम तो कुलक्षय से उत्पन्न होने वाली हानियों को समझते हैं। हमें इस पाप से बचना क्यों नहीं जान लेना चाहिए?

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत॥४०॥

कुलक्षये सनातनाः कुलधर्माः प्रणश्यन्ति उत धर्मे नष्टे कृत्स्नं कुलम् अधर्मः अभिभवति।

उत्तम कुलों के क्षय हो जाने पर कुल परम्पराएँ नष्ट हो जाती हैं, और उन परम्पराओं के नष्ट होने पर अधर्म सम्पूर्ण कुल को दबा लेता है।

विशेष विवरण- हर उत्तम कुल की कुछ पवित्र परम्पराएँ और एक न एक लोक कल्याणकारी सङ्कल्प होता है, जो हर सङ्कट में उन्हें बड़े से बड़ा बलिदान करने के लिए प्रेरित करता है। ये सब कुल-धर्म कहलाते हैं। किन्तु कुल के नेताओं के मारे जाने पर ये सनातन कुल-धर्म नष्ट हो जाते हैं। धर्म के नष्ट होने पर जब उस कुल के सदस्यों के सामने बलिदान के लिए प्रेरणा देने वाला कोई लक्ष्य नहीं रहता तो सारे कुल में स्वार्थ और आपाधापी का बोलबाला हो जाता है और अधर्म सारे कुल को दबा लेता है।

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसङ्करः॥४१॥

कृष्ण! अधर्माभिभवात् कुलस्त्रियः प्रदुष्यन्ति। वार्ष्णेय! स्त्रीषु दुष्टासु वर्णसङ्करः जायते।

हे कृष्ण! अधर्म के अधिक बढ़ जाने पर कुल की स्त्रियाँ दूषित हो जाती हैं। हे वार्ष्णेय! स्त्रियों के दूषित हो जाने पर वर्णसङ्कर उत्पन्न होता है।

विशेष विवरण- हे कृष्ण! इस संसार में धर्म तथा उच्च भावनाओं का अन्तिम दुर्ग स्त्री-हृदय है। किन्तु जब चारों ओर अधर्म का बोलबाला हो जाता है तो यह अन्तिम दुर्ग भी टूट जाता है। एक तो चुनाव का क्षेत्र संकुचित हो जाने से विवाह भी गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार नहीं हो पाते और गुप्त व्यभिचार भी बहुत फैल जाता है, तो चारों ओर स्त्रियों के दूषित हो जाने से हे वार्ष्णेय! वर्णसङ्कर फैल जाता है।

सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥४२॥

सङ्करः कुलघ्नानाम् कुलस्य च नरकाय एव भवति, एषाम् पितरः लुप्तपिण्डोदक-क्रिया हि पतन्ति।

जहाँ वर्णसङ्कर विवाह होता है अथवा व्यभिचार होता है, वहाँ परस्पर गुण, कर्म, स्वभाव न मिलने से कुल नरक बन जाता है और इस प्रकार के कुलघाती और वह कुल जहाँ इस प्रकार के लोग हों, नरक जीवन बनाने के लिए ही साधन करते हैं और जब युद्ध में जवान लोग मर जाते हैं तो बूढ़े लोगों को आपातकाल में वानप्रस्थाश्रम छोड़कर घर सम्भालना पड़ता है तथा जीवन भर की सैनिक वृत्ति को छोड़कर लकड़ियों का टाल खोलने जैसा कार्य करना पड़ता है। इस प्रकार वे वर्ण और आश्रम दोनों ओर से पतित होते हैं, क्योंकि उन बूढ़ों और छोटे बच्चों को पिण्ड तथा उदक अर्थात् अन्न और जल देने वाला कोई नहीं रहता।

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसङ्करकारकैः।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥४३॥

एतैः वर्ण-सङ्कर-कारकैः कुलघ्नानाम् दोषैः शाश्वताः जातिधर्माः कुलधर्माः च उत्साद्यन्ते।

इस प्रकार के वर्ण-सङ्कर उत्पन्न करने वाले कुलघाती लोगों के दोष से शाश्वत जाति-धर्म और कुल-धर्म नष्ट हो जाते हैं।

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन।
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम॥४४॥

जनार्दन! उत्सन्नकुलधर्माणाम् मनुष्याणाम् नियतम् नरके वासः भवति इति अनुशुश्रुम।

हे जनार्दन! हम आप्त जनों से यह सुनते चले आए हैं कि जिन मनुष्यों के कुल-धर्म नष्ट हो जाते हैं, वे मनुष्य समाज चाहे वे जाति-रूप हों या राष्ट्र-रूप, उन सब जातियों और राष्ट्रों का जीवन सदा दु:खमय होने के कारण उनका सदा नरक में वास होता है।

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः॥४५॥

अहो बत वयम् महत् पापं कर्तुं व्यवसिताः यत् राज्य-सुख-लोभेन स्वजनम् हन्तुम् उद्यताः।

अहो हन्त! हम बड़ा भारी पाप करने पर उतारू हो गये हैं, जो राज्य-सुख के लोभ से अपने आत्मीय जनों को मारने के लिए तैयार हो गये हैं।

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत्॥४६॥

यदि शस्त्रपाणयः धार्तराष्ट्राः अप्रतीकारम् अशस्त्रम् माम् रणे हन्युः, तत् मे क्षेमतरम् भवेत्।

यदि प्रतीकारहीन और शस्त्ररहित मुझे, हाथों में शस्त्र धारण किये हुए धृतराष्ट्र के पुत्र रणक्षेत्र में मार दें तो मेरा अधिक कल्याण होगा (मुझे यह सन्तोष तो होगा कि मैंने स्वजन-हत्या नहीं की)।

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत्।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः॥४७॥

एवम् उक्त्वा शोकसंविग्नमानसः अर्जुनः संख्ये सशरम् चापम् विसृज्य रथोपस्थे उपाविशत्।

इस प्रकार कहकर शोक से व्याकुल मन वाला अर्जुन युद्ध में बाण सहित धनुष का विसर्जन करके रथ की गोद में बैठ गया।

इति अर्जुनविषादयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः